शान्ति सुमन : व्यक्ति और कृति

❑ डॉ० सुनन्दा सिंह

शान्ति सुमन सुप्रसिद्ध नवगीतकार एवं वरिष्ठ जनवादी गीतकारों में एक अपनी अलग पहचान वाली गीतकार हैं। समकालीन नवगीत एवं जनवादी स्त्री गीतकारों में इनका स्थान सर्वोच्च है। शान्ति सुमन ने गीत की इन दोनों धाराओं को उच्चस्तरीयता दी है। गीत की दुनिया में इनका अस्तित्व बहुत बड़ा है, पर ये मेरी/हमारी 'मैम' रही हैं। कॉलेज में प्रोफेसरों से 'मैम' कहकर ही हम बातें करती थीं, पर शान्ति सुमन जी को कभी यह सम्बोधन स्वीकार नहीं हुआ। वे कहती थीं – 'आपलोग मुझको दीदी ही कहिये। इस शब्द में जितनी आत्मीयता और सम्मानजन्य लगाव है, वह दूसरे सम्बोधन में नहीं। मैम शब्द की गलत आधुनिकता से हमारा व्यक्तित्व घटता है। यहाँ इसको ध्यान में नहीं रखा जाता कि आधुनिकता केवल शब्द और बाहरी आवरण में नहीं होती। आधुनिक अन्दर से हुआ जाता है, अपने संपूर्ण आंतरिक शिल्प से इसको व्यक्त किया जाता है। केवल पहनावे–ओढ़ावे नहीं, इसमें सामान्य व्यवहार से लेकर भाषा एवं लोकाचार की सारी सीमाएँ आती हैं। पश्चिमी देशों में तो बच्चे 'क्रेच' में पलते हैं, माँ से उनकी अपेक्षाकृत कम देखा–सुनी होती है। इसलिये मॉम या मम्मी शब्द चल जाता है, पर हमारे घर में तो बच्चे माँ की ममता की छाँव में ही पलते हैं। इसलिये माँ जैसा कोई दूसरा आह्लादकारी, वात्सल्य से भीगा हुआ शब्द हो ही नहीं सकता। हाँ, कार्यालयों में राज–काज में मैम शब्द इसलिये चला हुआ है कि वहाँ की सारी व्यवस्था अंग्रेजियत में डूबी हुई है। जिस तरह कभी 'बाबू' शब्द प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया था, मैम सम्बोधन भी प्रतिष्ठा का पर्याय बन गया है। उन लोगों को मैम कह लीजिये जिनको यह शब्द अधिक गौरव देता है। मैं हिन्दी साहित्य पढ़ाती हूँ। इसलिये मुझको दीदी ही बनी रहने दीजिये। मुझको आदर से अधिक स्नेह और आत्मीयता में विश्वास है।' इस तरह ये हमारे लिये दीदी ही बनी रहीं।

अब तो मैं भी पचास के पास पहुंच रही हूँ। इतने लम्बे समय तक मैं गीतकार शान्ति सुमन के व्यक्तित्व की सहज गरिमा को देखने–सुनने का अनुभव संचित करती रही हूँ। महन्त दर्शनदास महिल कॉलेज के

हिन्दी–विभाग में बहुत वर्षों के बाद ऐसी लोकप्रिय प्रोफेसर आई थीं। इनकी विद्वत्ता और व्यवहार की सहजता से छात्रायें बहुत प्रभावित थीं। इनके वहाँ रहने तक कॉलेज के सारे सांस्कृतिक कार्यक्रम जिनमें कुछ तो बड़े ही भव्य और बिहार के किसी भी कॉलेज से अलग और ऊपर के कार्यक्रम हुए, शान्ति सुमन जी के संचालन और तैयारी की पूरी प्रक्रिया से ही संभव हुए। कलाकार छात्राएँ उनके स्नेह और मार्गदर्शन से इतनी उत्साहित होती थीं कि घंटों रिहर्सल करने के बाद उनको थकान का अनुभव नहीं होता था। शान्ति सुमन जी की बोलचाल से ही अपनापन झरता था। वे कहती थीं कि कभी हमलोग भी आपकी जगह होती थीं। आज हम यहाँ हैं तो आपलोग भी कुछ वर्षों में यहाँ पहुंचने ही वाली हैं। छात्राएँ जिनमें प्रथम वर्ष से लेकर ऑनर्स अंतिम वर्ष तक की होती थीं, शान्ति सुमन के शब्द उनमें नये विश्वास भर देते थे।

बहुत वर्षों तक महाविद्यालय पत्रिका का प्रकाशन बन्द था। प्राचार्या के परामर्श से शान्ति सुमन जी ने पत्रिका प्रकाशन की नयी शुरूआत की। पत्रिका का नया नाम रखा – 'दर्शना'। उनके कुशल संपादन में उसके कई अंक प्रकाशित हुए। खोज–खोज कर उन्होंने नयी से नयी छात्रा की रचनाओं का संचयन किया। उनकी रचनाशीलता को प्रोत्साहन दिया। सारी रचनाओं की परिशुद्धि से लेकर प्रूफ देखने तक का कार्य किया और इस तरह महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय की रचनात्मक छवि उजागर की और कॉलेज में साहित्यिक वातावरण को ऊर्जा दी।

फिर भी शान्ति सुमन जी कॉलेज की व्यवस्था से प्रसन्न नहीं थीं। जितने वर्षों तक कॉलेज में इन्होंने प्राध्यापन किया, इनको लगता रहा कि इतने समयों को इन्होंने अपने विरुद्ध जिया है। इस अनुभव को इन्होंने व्यक्त किया भी है। अपने उपन्यास 'जल झुका हिरण' (स्मृति प्रकाशन), इलाहाबाद, वर्ष – 1976 ई0) में 'कुछ पहले' शीर्षक से लिखते हुए इन्होंने कहा है – 'अपने संघर्ष के जिन दिनों में यह उपन्यास लिख रही थी, उनमें पुत्र मुकुल और पुत्री चेतना का अन्यतम सहयोग रहा था। कॉलेज से नित्य प्रति ऊबी मनःस्थिति लेकर लौटती थी, इधर रचनात्मक तनाव से मन बेचैन होता था। लिखने की स्थिति नहीं होती थी और लिखे बिना रहा नहीं जाता था। वैसे कठिन क्षणों में मैंने कष्ट को आत्मीयता दी और पक्ष–विपक्ष सबको अपना बना लिया। जीवन के

प्रति आत्मविश्वास तभी मुझमें जागा था। उन तमाम तनावों और प्रतिरोधों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरी रचनात्मक क्षमता को सम्पन्न किया।'

मैं शान्ति सुमन के व्यक्तित्व के बारे में अपने अनुभव कहूँ उससे पहले मैं उनके ही शब्दों में उनके व्यक्ति को समझने की चेष्टा करती हूँ। वे बड़े उदास दिन बीते थे। कई वर्ष अस्थायी व्याख्याता के पद पर रहने से उनका मानसिक सौमनस्य थोड़ा विचलित हुआ था। यद्यपि '72 से उनकी सेवा स्थायी हो गई थी, फिर भी मन से वह तकलीफ नहीं गई थी। लोगों की कही हुई बातें, पैसे और पैरवी के तंत्र उनके मन में कौंधते रहते थे। एक ओर इतनी डिग्रियाँ, विदुषी लोकप्रिय प्रोफेसर होने का गौरव और दूसरी ओर अस्थायी व्याख्याता होना अपने लिये ही नहीं, अपनी तरह के और लोगों के लिये भी उनको अन्याय और अपमान लगता था। सुनने में आता रहता था कि 'उसका' कमीशन में इसलिये हुआ कि उसने अध्यक्ष के निर्माणाधीन घर के लिए पचास बोरे सिमेन्ट और दो ठेले लोहे के छड़ पहुंचाये। यह सब सुनना भी उनको मिहनत के मुंह पर तमाचा जैसा लगता था। अपनी इस मनःस्थिति की अभिव्यक्ति उन्होंने 8 जनवरी 1973 के 'अभिमान' (साप्ताहिक पत्र) में की है। 'सूत्रपात' नामक उस संक्षिप्त नोट्स में उन्होंने लिखा है –

'किसी कविता की शुरूआत और नए वर्ष की शुभकामनाएँ देने के पहले मेरे मन में हर बार एक उदास बाँसुरी बजती है और कविता की रचना प्रक्रिया पर विचारने को विवश हो जाती हूँ। मुझको सम्बन्धों के ढेर सारे धागे उलझे हुए लगने लगते हैं और साठ के बाद जन्मे संबंध की व्यापार–भावना पर ढेर सारी मक्खियों की भिन–भिनाहट सुनाई पड़ने लगती है। ईलियट ने सही कहा है कि लेखन अपने व्यक्तित्व से पलायन का ही दूसरा नाम है। लेकिन अपने लिये – वही व्यक्तित्व वास्तविक है जो मेरी रचनाओं में है। इससे अलग या सम्पृक्त कुछ भी नहीं। मैं हूँ – मेरी रचनायें हैं – उन रचनाओं का सूत्रपात होता है, सूत्रपात का कोई कारण विशेष भी होता है – पर उसमें और मुझमें कुछ दूरी होती है – जैसे बाँहों से साँसों की दूरी। अपने लेखन व्यक्तित्व में – मैं अकेली हूँ – लेकिन लेखन के बाहर मैं अकेली हूँ ही नहीं। वह सब मेरा व्यक्तित्व बनाता है जो मेरे आसपास रहा है, वे स्थितियाँ और

लोग – भी मेरे इस जीवन के हिस्सेदार हैं जिन्हें अगर गिनाना शुरू करूँ तो डाल से उड़नेवाली फुर्र–फुर्र चिड़िया की कहानी बन जाए – लेकिन लेखन के पीछे वाले व्यक्ति को इसके बिना – पा सकना – भी संभव नहीं। एक बात है कि मेरे लिये किसी खास आदमी या चीज का प्रश्न एक और अवसर जरूर देता है। मेरे दोनों रूप आमने–सामने खड़े होकर एक दूसरे को अजनबी निगाहों से तोलने–परखने लगते हैं, शायद! कभी–कभी मिलते भी हैं – और जब मिलते हैं तो मैं जान ही नहीं पाती कि वे एक दूसरे का स्वागत कर रहे हैं या फिर एक और विदा का सूत्रपात.....।

फिर एक और विदा का सूत्रपात.... पता नहीं कौन क्या अर्थ निकाले। मुझे तो हमेशा यही लगता है कि मेरा हर संपर्क हर पल एक नई विदाई है। मिलना शायद गति और विदाई नियति है – और शायद यह नियति ही अपने चिह्न छोड़ जाती है। जगह–जगह प्लोटफार्म हैं, न वे बिछे हैं, न वे उठे हैं। जगह–जगह रूमाल हिल रहे हैं – हाथ हिल रहे हैं – टा–टा–बाई–बाई। डब्बे बदलते – आदमी बदलते हैं, लेकिन कुछ तार हैं जो खंभों पर हर जगह लिपटे हैं – साथ हैं और हर यात्रा के दूर खड़े गवाह हैं। उनपर कहीं नीलकंठ, कहीं कौवा – कहीं कोई कटी पतंग लटकी है। लाल साहब कहते हैं कि तुम बेहद निर्णय–दुर्बल हो – नहीं जानती कि निर्णयदृढ़ कौन है ? मैं तो नहीं ही हूँ। सच कहूँ, मुझे तो लगता है – आज हर व्यक्ति नहीं है। जिसका परिस्थितियों पर नियंत्रण नहीं – वह हो भी कैसे ? हर पल कसम खाती हूँ कि पैदल सफर करूँगी – पर घंटे आध घंटे पैदल चलने के बारे में कह अर्थात् पैदल चलने की संभावना की पूरी–पूरी छूट ले चुकने के बाद रिक्शा कर लेती हूँ। पता नहीं संकल्प गन्तव्य तक पहुंचने में है या यात्रा में साधनों को बहुत गंभीरतापूर्वक लेने में....। गन्तव्य को लेकर मन में कोई दुविधा होती तो शायद आज मैं कोई शिवानी जैसी लेखिका होती।

मुकुल के आठवें वर्ग में नाम लिखाने की समस्या है और लगता है, नया वर्ष आ गया है। चेतना की कोर्स की फिर से नई किताबें खरीदनी हैं और लगता है कि नया वर्ष आ गया है। नया कुछ हो न हो, वर्ष नया है। इसी से संतोष है। नया वर्ष विदा का एक और सूत्रपात।'

1966 के बाद '72 के पूर्वार्द्ध तक शान्ति सुमन के अनुभव में व्यवस्था

का वैसा अन्तर्विरोध घर बना रहा था जिसमें जनतंत्र के सारे जनविरोधी रवैये खुलकर सामने आ रहे थे। शान्ति सुमन कोई एक उदाहरण नहीं थीं, उनके जैसे कई मेधावी और सुपठित लोगों की वही स्थिति थी। 'बिहार डाक' (मुजफ्फरपुर से प्रकाशित पत्र) के 12 मार्च 1973 के अंक में सम्पादक सुरेश अचल ने बिहार डाक के लिये विशेष लेख लिखकर रेखांकित करते हुए 'अपनी मुलाकात' को बॉक्स में छापकर 'हिन्दी की अपनी पहचानवाली एकलौती कवयित्री डॉ0 शान्ति सुमन से बकलम खुद' शीर्षक से उनकी बड़ी सहजता से कही गई बातों को प्रकाशित किया है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, यहाँ प्रस्तुत है –

जीवन में जो घटित हुआ है, सबका हिसाब करना संभव नहीं। पर इतना है कि अब तक दो काम मैंने किए ही नहीं। लॉटरी के टिकट नहीं खरीदे और घर में मनी–प्लांट नहीं लगाया। कोई पूछे भी कि ऐसा क्यों नहीं किया तो इतना ही कहूँगी कि ऐसा अकारण नहीं है।

जीवन जहाँ से शुरू हुआ, वहाँ से शुरू करूँ तो हिन्दी तिथि से कोई आश्विन पूर्णिमा की रात थी, जब मेरा जन्म हुआ जो बाद में गलत होकर अनन्त चतुर्दशी की तिथि हुई। बाबूजी की डायरी में देखा था कि वह सन् 44 का सितम्बर महीना था। मेरा जन्म उत्तर बिहार के सहर्षा जिले में कासीमपुर नामक ऐसे निपट देहात में हुआ जिसके पोर–पोर में अन्धविश्वास और रूढ़ियों के ताबीज बँधे थे (हैं भी)। अंग्रेजी शासन तंत्र में बाबूजी डिफेन्स की किसी अच्छी आयवाली नौकरी में लगे थे। इसीलिए बचपन के बहुत सारे वर्ष जमालपुर (मुंगेर) में बीते। वहीं मेरी प्रारंभिक शिक्षा भी प्रारंभ हुई। परन्तु फिर भी, गांव में सरस्वती पूजा के दिन मेरे छोटे भाई दिनेश के साथ वैदिक रीति से मेरा भी अक्षरारंभ हुआ। संयुक्त परिवार होने के कारण उसकी खूबियों और खामियों को निकट से देखने का मौका शुरू से ही मिला। पर अपने जन्म के समय मैं अकेली शिशु थी अपने पूरे घर में और काफी दिनों तक यह स्थिति रही जब तक मुझसे मेरा छोटा भाई नहीं हो गया। अतएव मुझे जो प्यार मिला उसमें सम्मान के भाव की किंचित् गंध भी शामिल रही। मेरे चचेरे दादा उस समय जीवित थे जो मुझे अपनी आँखों की ज्योति समझते थे। किसी चीज को अस्वीकार कर देना मेरे लिए बहुत सहज था। दो बच्चों की लड़ाई में भी मेरी बात ही मान ली जाती थी। इस तरह मेरे संस्कार

में स्वाभिमान, अहं और रोब–दाब के साथ–साथ व्यक्तित्व की पृथक पहचान भी सम्मिलित होती गयी। मेरी एक चचेरी छोटी बुआ थी जिसको मैं बहुत तंग करती थी। हाईस्कूल तक यह बात रही कि जब कोई मेरा सहपाठी या साथ खेलने वाले बच्चे मेरी शिकायत करते थे तो अन्दर ही अन्दर मुझे खुशी होती थी कि मैं कहीं इनसे विशिष्ट हूँ।

अपने पड़ोस के कस्बेनुमा गाँव सुखपुर हाईस्कूल से मैंने प्रवेशिका की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अब मेरे आगे पढ़ने की समस्या थी। बाबूजी बहुत चाहते थे कि मैं पढ़ूँ पर घर के लोग तथा अन्य संबंधियों ने उन्हें सलाह दी कि अब विवाह के बाद ही मेरा अध्ययन–क्रम जुड़ सकेगा क्योंकि तब बेटी को गांव से बाहर भेजकर पढ़ाना पूरे समाज के मुँह पर तमाचा मारने के समान था और मेरे बाबूजी ऐसा नहीं कर सके। मेरे घर के लोगों को लगा कि मैं सयानी हो गई हूँ। पर मेरा मन अब भी बचपन की उन्हीं याद – रही कहानियों के जंगल में भटक रहा था जहाँ कई घरौंदे मैंने वैसे ही बनाकर तोड़ दिये थे और कुछ टूट रहे घरौंदों को बड़े एहतियात से रख छोड़ा था।

फिर 25 फरवरी 1959 को मेरा विवाह पूर्णिया जिले (तब) के भद्रेश्वर (फारबीसगंज) नामक गांव में हुआ। श्री जागेश्वर लाल दास मेरे पति हैं। उसी वर्ष जुलाई में लंगट सिंह महाविद्यालय मुजफ्फरपुर में मेरा नामांकन प्री–यूनिवर्सिटी में हुआ। मैं अत्यंत प्रसन्न थी कि मेरी संवेदना को समझने वाले लोग मिले थे। फिर मैंने बी0 ए0 प्रथम भाग की परीक्षा भी पास कर ली। इस बीच 16 फरवरी '61 को मेरे प्रथम पुत्र का जन्म हुआ। हमने बड़े प्यार से उसका नाम 'मुकुल' रखा। तब इस नाम से प्यारा कोई नाम नहीं लगा था। यद्यपि घर में मुकुल की देखभाल के लिए काफी लोग रखे गये थे, पर मुझे बहुत अधिक समय उस पर देना होता था। कभी–कभी पढ़ने के लिए बहुत समय पास नहीं होते थे। यह एक संदर्भ ही था कि मेरे एक जेठ के एक पुत्र भी मेरे सहपाठी थे। प्री में फिर भी मुझे प्रथम श्रेणी मिली। आनर्स की परीक्षा बड़ी–बड़ी वाधाओं के बीच मैंने दी। परीक्षा के बाद मेरी पुत्री चेतना का जन्म हुआ। घर के काम–काजों में भी समय देना था – क्योंकि घर के कामकाज के लिए जो लोग रखी गयी थीं, वे अधिक समय अपने को मेहमान ही समझती थीं निश्चित रूप से 'दादी' की भूमिका मेरे जीवन की निर्मिति में अन्यतम

है। उसकी स्नेहिल छांव में मेरा हर दुख सुखद हो उठता था। दादी का लहू और पसीना मेरे व्यक्तित्व के रेशे–रेशे में समाया हुआ है। उसने जितना त्याग मेरे लिए किया, उतना प्रतिफल देना मुझसे संभव कहाँ हुआ ? इस प्रकार 1965 में मैंने एम0 ए0 (हिन्दी) प्रथम श्रेणी में किया। बी0 ए0 में कुछ अंकों से मुझे प्रथम श्रेणी नहीं मिली थी। यह भी एक संदर्भ ही है कि एम0 ए0 में कुछ अंकों से मुझे स्वर्ण पदक नहीं मिला। अपनी नियति को अब तक मैं स्वीकार करने की मुद्रा में आ गयी थी। जिस आवोहवा में मैं साँस ले रही थी, वह मेरे लिए एक अलग वातावरण बुनती जा रही थी जहाँ मैं नितान्त अकेली थी। मुझको कोई प्रोत्साहित करने वाला भी नहीं था। मुजफ्फरपुर मेरा शहर नहीं था। वह अब भी मेरा शहर नहीं हुआ है, पर तब तो इसकी मिट्टी में मेरे लिए गजब की वीरानगी थी। हाँ, सम्बन्ध एक आन्तरिक सम्बन्धहीनता से भरा दीखता था। यह सब मेरे लिए नया अनुभव था। जो कुछ भी हो उन समस्याओं और उलझनों का आभार स्वीकारती हूँ जिन्होंने मुझे इस बिन्दु पर स्थित किया। 1971 में मुझको पीएच0–डी0 की उपाधि मिली। पर यह उपाधि अबतक रेगिस्तानी मृगजल ही सिरज सकी है।

लिखने की प्रवृत्ति की प्रेरणा हाईस्कूल के दिनों में ही जाग्रत हो गयी थी। उस समय की कविताएँ आज भी मेरे पास पड़ी हैं, पर अब लगता है कि छठे–सातवें स्टैण्डर्ड में पढ़ते हुए मुकुल ने जो कवितायें लिखी है, मेरी उन कविताओं से ये कहीं बेहतर हैं। अबतक बिहार से बाहर भारत की अधिकांश प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में छपती रही हूँ। प्री–पार्टवन–काल में 'सर्जना' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी किया।' '62 से लेकर दिसम्बर' 71 तक दिल्ली से प्रकाशित 'भारतीय साहित्य' और 'कंटेम्पररी इंडियन लिटरेचर' की सह–संपादिका रही। '61 से लेकर अबतक आकाशवाणी के केन्द्रों से रचनाओं का प्रसारण होता रहा है। '70 में इलाबाहाद से मेरे नवगीतों का पहला संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' के नाम से प्रकाशित हुआ। मुख्य रूप से कविता और आलोचनाएँ लिखी हैं। सम्प्रति एक उपन्यास पूरा करने में संलग्न हूँ। अपनी विशेष अभिरूचि के बारे में ठीक से नहीं जान पाई हूँ। एक अच्छा शब्द भी कोई कह दे तो मन उसके प्रति आभार से झुक जाता है। कभी–कभी मौसम के बदलने का इंतजार भी एक बहुत अच्छी व्यस्तता हो जाती है। पर एन्टी रोमान में

गहरी आस्था है। आर्थिक और वैयक्तिक प्रसंगों में मोहभंग की इतनी स्थितियों से गुजर चुकी हूँ कि मुझे हर रंग में पानी नजर आता है। सहज भाषा के प्रति मोह है पर इतना तय है कि भाषा जीवन की स्थितियों और अनुभव खंडों से ही जन्म लेती है। जिसके पास विभिन्न प्रकार की आसक्तियों के टूटने का तनाव अधिक है, उसकी भाषा अधिक धारदार है। इसीलिए 'एक पति के नोट्स' और 'एक थी विमला' की भाषा तब पसंद आई थी तथा जो भी नहीं है सबके पीछे अपनी दुखती स्थितियों का बोझ ही अधिक है। फिलहाल 'अन्यथा' के नवगीत–अंक के संपादन से जुड़ी हुई हूँ। प्राध्यापन के जड़ वातावरण में भी साहित्य की सुगबुगाहट कहीं अन्दर महसूस करती हूँ तो लगता है अभी जीवित हूँ।

'प्रगति' नामक एक पत्र में शान्ति सुमन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जानने और लिखने में बड़ा फर्क होता है। कभी–कभी शब्द इतने कमजोर लगने लगते हैं कि विश्वास ही नहीं होता कि हर जानी हुई बात का बोझ वे उठा सकेंगे। जब मैं पढ़ती थी तो अक्सर यह विरोधाभास मेरे साथ होता था कि जिन प्रश्नों के बारे में कम जानती थी, उनको अधिक सम्पन्न रूप से लिख लेती थी और जिन प्रश्नों के लिए ढेर सारे ज्ञान मेरे पास होते थे, उनको मैं ठीक ढंग से संयोजन नहीं दे पाती थी। उनमें सामग्रियों की इतनी भरमार होती थी कि जानकारी का कम होना वहाँ एक अपेक्षा बन जाती थी। आज भी कभी किन्हीं मौकों पर मैं उसी असंतुलन से गुजरने लगती हूँ।' बहरहाल, मुजफ्फरपुर प्रवास के अपने चौदहवें वर्ष में (जनवरी 1973) ये इस असंतुलन को जी रही थीं तो निश्चय ही उसके पीछे कई सामयिक–मानसिक तनाव रहे होंगे। घर–परिवार, आजीविका और रचनाधर्मिता के दबाव अवश्य ही उनके मन पर गहरे रहे होंगे। उस समय मुजफ्फरपुर में एक स्त्री के लिए इतने कुछ बहुत कुछ की तरह थे। सबमें संतुलन और सौमनस्य जोड़ना सचमुच कठिन होगा। शान्ति सुमन ने सबका समुचित निर्वाह किया। घर में सदैव अतिथियों का आना–जाना लगा रहता था। व्यस्त रहते हुए भी पिता और पति के घर से आने–जाने वाले लोगों के आदर में इन्होंने कभी कमी नहीं होने दी।

शान्ति सुमन कभी बहुत हँसने–बोलने वाली स्त्री नहीं रहीं। सेमिनार

और परिचर्या–गोष्ठी में भी अपेक्षा के अनुकूल ही बोलती रही हैं। आज भी जब वे मंच पर जाती हैं, कोई भी, किसी से भी अनावश्यक बातें नहीं करतीं। किन्तु जहाँ बोलना है, वहाँ चुप नहीं रहती हैं। किसी का समर्थन वे पूरे मन से करती हैं, पर उनका विरोध कभी संवेदनहीन नहीं होता। मौसम के बारे में जब कभी उनसे बातें हुईं, उन्होंने हेमन्त–शिशिर और वर्षा के पक्ष में अपना विचार रखा। वसन्त की प्रशंसा वे बहुत खुलकर नहीं करतीं। इसके पीछे जीवन की वे कुछ घटनायें हैं जो उनकी खुशी को निरापद व्यक्त नहीं होने देतीं। खुशी उनके निकट एक डर भी बुनती है। कई खुशियों को वे इस तरह जी लेती हैं कि जो उनको जानता नहीं, वह समझ ही नहीं सकता। इस संकोच और अंतर्मुखता के कारण लोग उनको कई बार अभिमानी समझ लेते हैं, पर ऐसा है नहीं। शान्ति सुमन स्वभाव से बहुत कोमल और विनीत हैं। खुशियों के प्रति उनके मन में कैसा आकर्षण है, यह उनके एक ललित आलेख से व्यक्त होता है जिसका साक्ष्य हैं 'बिहार डाक' के 19 मार्च '73 में प्रकाशित 'अंगों से सट गये भरे दिन रंगों से फागुन के' शीर्षक उनकी अभिव्यक्ति की पंक्तियाँ –

ऋतुराज वसन्त के आते ही ऋतु एक रंगीन भंगिमा में भर गई है। बसन्त उस उन्माद का नाम है जिसमें पेड़–पौधे, नदी–झरने, बाग–बगीचे, स्त्री–पुरुष सभी एक अज्ञात जीवन–रस से उमगने लगते हैं। नसो–शिराओं में रंगों की नदी तैरने लगती है। एक उन्मादक संगीत नई कोपलों, पत्तियों और मधुबौरित शाखों पर हिलने लगता है। भीतरी प्रदेशों की जड़ीभूत एकरसता को भंग कर एक नया सौंदर्य–राग फूट पड़ता है। हर उठती, गिरती साँस के साथ एक गीत होता है। कुल मिलाकर होता है रंगों, गंधों, स्पर्शों और गीतों का मौसम। ऐसा मौसम जिसमें आंतरिक हर्षोल्लास बाहर छलक आता है। ढोल के धमाके, मादल के मधुर स्वर और मृदंग के उत्तेजक बोल। मूर्च्छना में मीड़ों में बजता हुआ तिलक कामोद, भीमपलासी और इमन। हर बिरहिनी की छत पर कागा बोल उठता है। उसकी आँखों में प्रिय के पदचाप उभरने लगते हैं और बजने लगती है होली की आगमनी। द्वार का वह पथिक जो अतिथि नहीं है, होठों पर उसका नाम आते ही गन्धमादन सा बरसने लगता है। वातावरण के इस गीतिल रूपबंध के कारण मन झरनामुख सा हो जाता है और रूप के सरोवर में वह उतरने के पहले की काँपने लगता हैं और

दिन गीतों के छंद बन जाते हैं –

'गीतों से भरे दिन फागुन के ये
गाये जाने को जी करता'

ठिठुरन की रातें बीतीं नहीं कि दर्दीले दिन शुरू हो गए और पतझड़ के कारण जो एक उदास बांसुरी बजने लगी थी, फागुन के छलियापाहुन के आते ही मोहक लय में बदल गई। उदासी काई सी फट गई और एक रंगिम सौंदर्य अंग–अंग में समा गया। अजंता उँगलियों में जाने किन अज्ञात–अनाम संकेतों पर थिरकनें भर गईं, मन की सौ आँखें हो गईं। *'यह कैसा वातास कि मन को नयन–नयन कर दिया/गीत को चुप्पी से भर दिया/भर दिया – यह कैसा वातास!/कर थर–थर/वन थर–थर सारा जीवन थर–थर/यह कैसा उल्लास!'*

मंजरियों की भाषा में जाने क्या बजने लगता है। रंगों की बोली गुलाल सी लगती है। गीत सी बजती हुई एक सरस बेचैनी! पाने की शीघ्रता में छूट जाने की लाचारी –

'अँट नहीं रही है
फागुन की आभा
तन सट नहीं रही है।'

यही मन होता है कि मन के कटोरे को कोई सुरों से भर देता। रचने की नई–नई प्यासों से लबालब कर देता। अपनों–परायों का रिश्ता टूट जाता है। आत्मीयता के कगार बहुत पास–पास दिखने लगते है। चीजें सहजता से समझ में आने लगती हैं और वसन्त अपने होने की अनुभूति जगाता है। मानो यह वसंत नहीं, किसी चक्रवर्ती सम्राट का छोड़ा हुआ दिग्विजयी अश्व हो जिसे रोकना बड़ी मुश्किल है –

'फागुन का रथ कोई रोके
टूटी शाखें पतियाने लगीं
घेर–घेर कर बतियाने लगीं
ऐसे में कौन इन्हें टोके।'

इस रोकने–टोकने में कितनी अनजानी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, कितने तरह के राग–रंग के मेले लग जाते हैं। कहीं हास–परिहास, कहीं उपालंभ के दहके गुलमुहर, कहीं रंगों के छीटों से ताने। कुल

मिलाकर सुख की अनेकांत अनुभूतियाँ जो जीवन को गीतिकाव्य बना देती हैं – गाने लायक कोई उर्दू की बहर। कहीं पुरानी स्मृतियों के घेराव, कहीं करने के लिए ढेर सारी रंगीन बातें। प्रेम का एक पुल यहाँ से वहाँ तक बन जाता – प्रेम में प्रेषणीयता कहाँ नहीं होती। मौसम एक हुआ तो क्या – व्यक्ति की स्थितियाँ विभिन्न होती है। सोचने का सुख कितना बड़ा होता है।

'बड़े–बड़े गुच्छों वाली
सुर्ख पत्तों की लतर
जिसके लिये कभी जिद थी
यह फूले तो मेरे ही घर।'
'हिलती हुई पंखुड़ियों में यह कामना
शेष रह गई कि,
बहुत संभव है इसी उन्माद में
वह दीख जाए
जिसे हम और तुम चाहकर भी
कह न पाए।'

इसी अनकहे आवेश में कहीं 'उत हरि इतहि राधिका गोरी' नाचती हुई दीखती है। मृदंग, झाल–डफ और बीच–बीच में बाँसुरी की धुन। फिर कहना नहीं पड़ता –

'पाहुन चुपचाप खड़े हो नजर झुकाए
बात क्या हुई ? कैसे आए ?'

बन्द या खुली आँखों में भोगा हुआ सुख लरज उठता है – सतरंगे सपने इन्द्रधनुष के फूलों से खिल उठते हैं अपने–अपने प्रियों के लिए –

'तुम खुले नयन के सपने हो'

फागुन जब बीतने लगता है और अबीर की झोली साफ होने लगती है, घुलते हुए रंगों को मन सहेज कर रखने लगता है तो फिर महक उठता है वसन्त–वन में गुलाल का फूल और पागल मन बिसूरने लगता है –

वहीं कहीं छूट गया फागुन
कोई दे जाए

वहीं की वहीं रुकी राहें
कोई पतिआए

इस तरह फागुन प्यार के किसी शुभारम्भ सा आकर झेलने को क्या कुछ नहीं दे जाता है.... ।'

सुविधायें मिलने पर भी शान्ति सुमन अपने जीवन में कभी 'हाइ–फाइ' नहीं रहीं। विवाह में मिले गहने भी वे दो–चार महीने नहीं पहन सकीं। विवाह 25 फरवरी 1959 को हुआ और उसी वर्ष जुलाई में कॉलेज में उनका नामांकन हुआ था। लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर के प्राचार्य के कठोर अनुशासन में इन्होंने खादी की साड़ी पहनी। वहाँ छात्राओं के लिए साज–श्रृंगार पूरी तरह निषिद्ध था। अन्य छात्राओं ने तो थोड़ी–बहुत छूट ले भी ली थी, पर ये अनुशासन के विरूद्ध कभी नहीं हुईं। कॉलेज के उन दिनों की सादगी इनमें अभी तक बनी हुई है। तब से लेकर आज तक एक अंगूठी भी इनकी उंगली की शोभा नहीं बढ़ा पाई। गहनों और कपड़ों से आई सुन्दरता की सराहना ये कभी नहीं करतीं।

एक बार एक मित्र ने शान्ति सुमन से चुप रहने का कारण पूछा तो उन्होंने सीधे कहा कि चुप रहने से बहुत सारी चीजों को समझने का अवसर मिलता है। 'दैनिक आज' में होली के समय कुछ प्रसिद्ध कवियों और लेखकों के साथ शान्ति सुमन (केवल एक कवयित्री) के होली के संदर्भ में संस्मरण छपे थे। उस संस्मरण में उन्होंने जो कुछ कहा है उनसे इनके जीवन के अनछुए–अचीन्हे प्रसंग सामने आते हैं। उनकी बातों को उनकी भाषा में सुनना अधिक सार्थक और सुखद है। शान्ति सुमन ने उस संस्मरण का शीर्षक दिया था – 'रंग जो छुड़ाये नहीं छूटते थे।' 'दैनिक आज' ने उनको गीतों की मलिका डॉ0 शान्ति सुमन कहकर संबोधित किया। मैं उस संस्मरण को अविकल देना चाहती हूँ –

'गीतों की मलिका डॉ0 शान्ति सुमन होली से जुड़े संस्मरण की बात पर कहती हैं – होली का संस्मरण लिखना या सुनाना चाहूँ तो आज की होली का रंग मुझसे अपना दाय मांगने लगता है। आज होली के रंग उतने प्रसन्न नहीं लगते जितने पहले लगते और होते थे। कभी–कभी तो ये उदास भी कर जाते हैं और रंगों की फुहारों के बीच भी आदमी अकेला रह जाता है।

संयोगवश पिता के घर में मुझसे बड़ी न कोई बहन थी, न भाई। स्वभावतः बहनोई और भाभी की अनुपस्थिति ने मेरे रंगों को कहीं कम कर दिया। परिवार में उन्नीस भाई–बहनों में मैं सबसे बड़ी थी। खेल–खेल में अनायास उन पर रंग डाल भी दिया तो मुझको यह याद रहता था कि मैं उन सबसे बड़ी हूँ। इसलिए परंपरा के अनुसार वे सभी मेरे पांव पर अबीर लगाते थे और मैं भी प्रदान में उनको अबीर लगा देती थी। एक बड़प्पन का भाव तभी से मुझमें जग गया था। आशीष देना, क्षमा करना जैसे गुण तभी मुझमें आ गये थे।

मेरा जब विवाह हुआ तब भी ऐसा संयोग जुड़ा कि उस घर में मेरी न कोई छोटी ननद थी, न देवर। चार भाई और दो बहनों में मेरे पति सबसे छोटे हैं। यहाँ भी रंग सीधे मुझ तक नहीं पहुंचा। अपने घर की बगल के परिवार में जो लोग थे उनमें अधिकांशतः आदरणीय थे। शेष की मैं ही सम्मानयोग्य थी। इसलिये वे मेरे पैर पर ही अबीर लगाकर अपने कर्त्तव्य बोध को सम्पन्न कर लेते थे।

जीवन के इस अंतर्विरोध पर मुझको आज भी हँसी आती है कि पिता के घर में अपनी पीढ़ी में सबसे बड़ी थी और लोगों की तरह मैं होली नहीं खेल सकती थी। प्रकारान्तर से यही स्थिति बाद में भी बनी रही जब पति–गृह में मैं सबसे छोटी हो गई।

फिर भी जीवन इतना निष्करूण तो होता नहीं है। मुझको याद आता है कि एक बार गांव में टोले का एक पाहुन आया था। सुधा मेरी बाल सखी–संबंध में तो वह मेरी फुआ लगती थी, पर एकवय और एक साथ पढ़ने के कारण वह मेरी निकट की सहेली थी।

एक बार सुधा और टोले की कुछ लड़कियों के साथ मैंने भी उस पाहुन पर लुक–छिपकर रंग डालने का मन बनाया। टोले के कुछ लड़कों को फुसलाकर तैयार किया कि पाहुन जबनिकले तो इधर से ले आना और हमलोग रंग तैयार कर खिड़की के पीछे छिपकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। पाहुन चालाक था, सो तुरंत निकला ही नहीं और हमलोग उकताने लगे। इस बीच किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी तो एक लड़की ने कहना शुरू किया – आ रहा है, आ रहा है, तैयार हो जाओ। हममें से कुछ के पास पिचकारियाँ थीं और कुछ ने बोतल में

रंग भरकर पिचकारी बनाई थी। सारे रंग एक साथ खिड़की से उड़ेल दिए गये। फिर तो एक क्षण के बाद होली क्या हुई अनर्थ हो गया। पाहुन के बदले लालाबाबा पर रंग पड़ गये थे। होली के रंग जितने लाल नहीं थे, उतनी लाल–पीली उनकी आँखें देखकर हमारी जान सूख गयी। सबके बाप के नाम लेकर ही वे पुकारने लगे। दरअसल छोटे–बड़े सभी टोलेवालों से वे उम्र, रोब–दाब और गुस्से में बड़े थे। बहुत को तो उनको टोकने की हिम्मत भी नहीं होती थी। सबके साथ मुझको देखकर वे और आग–बबूला हो गये। कहा – 'कुँवर के बेटी से हो...' मेरे पिता जो आज कुँवर बाबा हैं, गांव में लोग उनको कुँवर जी कहकर पुकारते थे। मेरे तो दुहरे संकट थे। इनके बाद बाबूजी की डांट का भय भी सता रहा था। हम सिर झुकाये खड़े ही थे कि एक लड़की पर उनका झन्नाटेदार तमाचा गूँजा। मैं तो भागी और दादी के आंचल में छिप गई। वह ऐसा अभय क्षेत्र था जहाँ से मुझको निकालना किसी के लिए भी मुश्किल था। बिना मार लगे ही मैं फूट–फूटकर रोई। मेरा रोना देखते ही दादी की विह्वलताने मेरे आँसुओं को पोंछ दिया और लालाबाबा को भी माफ नहीं किया। दादी ने जो उनको कहा – उसका अर्थ था कि लड़कियाँ होली खेल रहीं थीं, आप उधर क्यों आये। लालाबाबा पहली बार चुप हुए थे।

जीवन की वह घटना आज भी वैसी की वैसी याद है। तमाचा आज भी गूंजता है और सखी के गाल पर लगी चोट महसूस करती हूँ। दादी की करूणा से ओत–प्रोत हो जाती हूँ। मुजफ्फरपुर के मीठनपुरा में रहकर भी अपना गाँव–घर सदैव याद आता है।'

जीवन में कभी किसी ने अच्छी बात कही, एक अच्छा शब्द भी, तो शान्ति सुमन उसको याद रखती हैं – उस बात या शब्द को कहनेवाला भले परिवार का कोई व्यक्ति हो, मित्र, बड़े अधिकारी या कोई रिक्शावाला, घर में काम करने वाली दाई ही सही। इनके मन में ऐसे शब्द घर बना लेते हैं। ठीक उसी तरह कहीं का सुना अपशब्द या अपमानजनित व्यवहार भी इनसे नहीं भूलते। मन ही इनकी सबसे बड़ी संपदा है जो पल–पल इनको संवेदना से जोड़े रहती है। आज की उपभोक्ता संस्कृति में सबसे अधिक नुकसान मन का ही हुआ है जिसके भावना से भरे इन्द्रकमल को बाजार ने परती पर गिरा दिया है। घर के भीतर तक

हस्तक्षेप करते हुए बाजार से इनका हरदम विरोध रहा, पर बच्चे जब कपड़ों में ब्रान्ड की बातें करते हैं, टी0 वी0, क्रीम–पावडर–परफ्यूम आदि में बाजार की धड़कनें महसूस करना चाहते हैं तो शान्ति सुमन उनके तर्कों के सामने स्वयं को हल्की मुस्कान के हवाले कर देती हैं।

शान्ति सुमन के व्यक्ति को और अधिक समझने के लिए थोड़ा और पीछे जाना होगा। शान्ति सुमन का जन्म बिहार प्रदेश के सहर्षा जिला स्थित कासीमपुर गांव में हुआ। वह एक मध्यवर्गीय किसान–परिवार था जिसकी मुख्य आय खेती पर निर्भर करती थी। उनके पिता श्री भवनन्दन लाल दास जिनके बोलचाल के नाम पर अब वे श्री कुँवर बाबा हैं के अतिरिक्त दूसरा कोई पारिवारिक सदस्य नौकरीपेशा नहीं था। इनके पिता ने भी जमालपुर से इलाहाबाद और फिर स्थानान्तरण होने पर मद्रास जाने की स्थिति में गांव की खेती और घर–परिवार की देखभाल के लिए नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और इस तरह अंग्रेजी शासन का साथ छोड़ दिया था। शान्ति सुमन नौ भाई–बहन हैं – छः भाई और तीन बहनें। अब तो सबके अपने–अपने सुखी–स्वस्थ परिवार हैं। शान्ति सुमन सभी भाई–बहनों में बड़ी है। दिनेश, अरुण, विनोद, नवीन, पूनम और कमलेन्दु भाई हैं और रेखा और नूतन बहनें। इनका विवाह हुआ तो चार भाइयों और दो बहनों का परिवार इनको मिला। इनके पति भाई–बहनों में सबसे छोटे हैं। अब तो दोनों ही परिवार इतने बड़े हो गये हैं कि सबके नाम लेना कठिन है। अपने जेठ के पुत्रों में ये बालेश्वर, नरेन्द्र, महेश, वीरेन्द्र, अमरेन्द्र, सत्येन्द्र और प्रभात रंजन के नाम लेती हैं। अरविन्द जिनके बचपन का नाम मुकुल है, उनका पुत्र है और चेतना वर्मा उनकी बेटी है। शान्ति सुमन का अपना परिवार बहुत छोटा है। इसमें इनका पुत्र और पुत्रवधू डॉ0 विशाखा वर्मा और इनके दो बच्चे – पुत्री शालीना और पुत्र ईशान हैं। चेतना के दो बच्चे हैं – पुत्र अपूर्व और पुत्री श्रेयसी। शान्ति सुमन के जमाता अब नहीं हैं। 2003 के सितम्बर में उनका असामयिक निधन हो गया। बेटी की सूनी मांग शान्ति सुमन का मर्मान्तक दुख है। चेतना वर्मा एक प्रतिभाशील कवयित्री हैं। उनकी रचनाधर्मिता उनके दुखों को सृजनात्मक बनाती है।

शान्ति सुमन का बचपन जिस परिवेश में बीता, वह साधारण किसानों और खेतिहर मजदूरों का परिवेश था। इनका गाँव खेत–खलिहान,

आम–जामुन, अमरूद, कटहल और शिरीष की हरियाली से घिरा एक नितान्त पिछड़ा हुआ गांव था। शिक्षा की वहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। पिता के वैयक्तिक शिक्षा–प्रेम से इनका पढ़ना–लिखना शुरू हुआ। शान्ति सुमन ने कहा कि उनकी प्रारंभिक शिक्षा में उनके बच्चाकाका श्री मदन मोहन लाल जिनका असली नाम रामेश्वर लाल है, का योगदान अप्रतिम है। कोई जान नहीं सकता कि उस पिछड़े देहात में जहाँ एक सीधा रास्ता तक नहीं था, बच्चा काका कैसे किताब लाते थे। तब परिवार में पैसे का स्रोत खेती से प्राप्त अन्न ही था जिसको बेचकर कुछ भी खरीदा जा सकता था – नमक, तेल, किताबें भी। बच्चा काका कभी–कभी शहर जाते थे। वहीं से किताबें, कापियाँ, कागज और गुलाब काकी के लिए चप्पल भी लाते थे। तब गाँव में स्त्रियाँ चप्पल नहीं पहनती थीं। बूढ़ी औरतें तो साया (पेटीकोट), ब्लाउज भी नहीं पहनती थीं। बच्चाकाका शहर जाकर वहाँ की बदलती जिन्दगी को देखकर आते थे। वे गांव को सुधारना चाहते थे, पर गांव का अंधसंस्कार इतना जड़ था कि वे बहुत कुछ सोचकर भी नहीं कर पाये। तब इस टोले से उस टोले तक लड़कियों का आना–जाना भी नहीं था। बच्चाकाका ने इस जड़ता को तोड़ा। उन्होंने पढ़ने–लिखने में बहुत लोगों की मदद की अपूर्व बात यह है कि उनके मूल नामवाले सर्टिफिकेट पर उनके समान नामवाले मित्र ने आजीविका की पूरी अवधि तक नौकरी की। बच्चाकाका ने स्वयं नौकरी नहीं की। वे राजनीति में भी रहे, पर कभी किसी टिकट पर खड़े नहीं हुए। उनके इस स्वच्छंद जीवन में शान्ति सुमन के पिता का अन्यतम सहयोग था। बच्चाकाका के पिता ने ही शान्ति सुमन के पिता को अपने अंतिम समय में घर की देखभाल की जिम्मेदारी और घर का स्वामित्व सौंपा। इसलिये शान्ति सुमन के पिता घर की श्रीवृद्धि के बारे में अधिक सोचते थे। वे जब खेत देखने जाते थे तब उनके बच्चाकाका बखार से धान निकलवा लेते थे और उसको सुपौल की हाट में बिकने के लिए भेज देते थे। उन पैसों से बच्चाकाका अपनी कुछ चीजें खरीदते थे और घर में ढेर सारी मछलियाँ खरीद लेते थे। पूरा घर छककर मछली–भात खाता था। इन्हीं खट्टे–मीट्ठे अनुभवों के बीच शान्ति सुमन का बचपन बीता और वे बड़ी होकर इतनी बड़ी गीत–कवयित्री बनीं। अपने उसी परिवेश में शान्ति सुमन ने जाना कि खिले फूलों के

मुख पर सुख ही सुख है, पर पीछे जो अन्तहीन दुख है, उसको कोई नहीं देखता। ऐसा भी होता है कि लोग जब किसी का दुख दूर करने लगते हैं तो उसके कई सुख भी नष्ट कर डालते हैं। सहानुभूति हरदम दुख को कम नहीं करती, दुख को बढ़ानेवाली भी होती है। अपने निजी जीवन में इन्होंने सहानुभूति लेने–देने में किंचित परहेज ही किया है।

शान्ति सुमन की कृतियों के बारे में पहले भी बहुत कुछ लिखा गया है। अपने स्कूल के दिनों में ही उन्होंने गीत लिखना शुरू किया था। उनके गांव के निकट के गांव वाराही में स्कूल और पुस्तकालय भी था। उनके एक चाचा वहाँ से किताबें पढ़ने के लिए लाते थे। उसी क्रम में इनको पन्त और महादेवी के गीत और कविता–संग्रहों को पढ़ने का अवसर मिला। चाचा कहानी–संग्रह और उपन्यास भी लाते थे, पर पढ़ने के दौरान उतना समय नहीं निकाल पाने के कारण शान्ति सुमन की रूचि गीत और कविता को ही पढ़ने में अधिक संलग्न हुई। विशेषकर गीत के प्रति यहीं से इनका आकर्षण बढ़ा। स्कूल के दिनों में कॉपियों पर कितने ही गीत–संग्रह, उपन्यास और एकांकी की इन्होंने रचना कर ली थी। यहाँ तक कि उनमें समर्पण का पृष्ठ भी होता था। बाद में उनमें से कितने ही संग्रहों को नष्ट कर दिया गया। कुछ तो अभी भी घर में रखे हैं। आज की परिस्थितियों में शान्ति सुमन को बचपन की वे रचनायें शब्दों के घरौंदे जैसी लगती हैं।

इस प्रकार शान्ति सुमन की पहली गीत–रचना 'रश्मि' पत्रिका (त्रिवेणीगंज, सहर्षा से प्रकाशित) में छपी। फिर तो उनके कई गीत 'समाज कल्याण', 'अन्तरा', 'आर्यावर्त्त' आदि अनेक पत्र–पत्रिकाओं में छपे। सबके नाम अब इनको याद नहीं हैं। लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर जहाँ ये एम0 ए0 तक पढ़ीं, के प्राचार्य श्री महेन्द्र प्रताप को जब पता चला कि ये गीतकार हैं तो उन्होंने इनकी रचनाओं को देखने की इच्छा व्यक्त की। तब तक छपी अपनी सारी रचनाओं वाली पत्रिकाएँ उन्होंने प्राचार्य को देकर उन रचनाओं पर उनके विचार मांगे। संकोच में शान्ति सुमन ने उनसे पत्रिकायें नहीं मांगीं और प्राचार्य महोदय भूल गये, पत्रिकायें नहीं लौटीं। शान्ति सुमन का मन आज भी उन रचनाओं के लिए बहुत दुखता है।

अब शान्ति सुमन पुराने गीतों और नये गीतों का रचनात्मक अन्तर समझने लगी थीं। उनके गीतों में निखार आने लगा था। उनका पहला नवगीत–संग्रह 1970 में 'ओ प्रतीक्षित' के नाम से लहर प्रकाशन, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया। उस समय ठाकुर प्रसाद सिंह, चन्द्रदेव सिंह और शंभुनाथ सिंह के अतिरिक्त उमाकांत मालवीय का नवगीत–संग्रह 'मेंहदी और महावर' 1963, रमेश रंजक का 'गीत विहग उतरा' 1969 में प्रकाशित हुआ था। नवगीत की फसल तैयार होने लगी थी। उस समय किसी नवगीत–संग्रह का प्रकाशित होना बहुत बड़ी घटना थी। शान्ति सुमन का नवगीत–संग्रह उस घटना की प्रतिश्रुति बनकर आया। दो–तीन वर्षों के अन्तराल पर और भी नवगीत–संग्रह छपे थे। 'ओ प्रतीक्षित' तब छपा था जब इलियट से प्रभावित अज्ञेय जैसे कवितावादियों ने गीत को अस्वीकार करना प्रारंभ कर दिया था। पर गीत अपने विकसित रूप में नवगीत होकर पूरी त्वरा से आगे बढ़ रहा था। उस विकसनशील अवस्था में नवगीत में शान्ति सुमन की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना गया था। नचिकेता ने आरा में शान्ति सुमन पर केन्द्रित सम्मान–गोष्ठी में नवगीत पर सार्थक संवाद आयोजित करते हुए कहा था – 'मैं नवगीत के प्रवर्त्तक की बात नहीं करता, बल्कि जिन नवगीत हस्ताक्षरों ने नवगीत को कंधे से कंधा मिलाकर इस संघर्ष में भाग लिया है उनमें डॉ0 शान्ति सुमन का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। अतः मैं चाहूँगा कि डॉ0 सुमन के इन नवगीतों के परिप्रेक्ष्य में आज के नवगीतों की रचना–संगति और उपलब्धिमूलक सार्थकता और प्रासंगिकता की पड़ताल की जाए।' उस गोष्ठी में शान्ति सुमन के नवगीतों की विस्तार से समीक्षा की गई थी।

शान्ति सुमन का दूसरा नवगीत–संग्रह 'परछाईं टूटती' 1978 में प्रकाशित हुआ। 'ओ प्रतीक्षित' की अपेक्षा इसमें अधिक सुपरिणत और मँजे हुए नवगीत हैं। 'ओ प्रतीक्षित' के गीत मध्यवर्ग की हिस्सेदारी के गीत हैं। इसमें मध्यवर्गीय कुण्ठा और तनाव भी है, परंतु मध्यवर्गीय जीवन के आत्मीय प्रसंग और गहरी अनुभूति से जुड़े चित्र और साधारण जन के दैनंदिन जीवन से उठाये गये ताजे बिम्बों के कारण ये गीत अधिक सराहे गये। 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों में डॉ0 रेवतीरमण ने गीतकर्त्री के भावावेश को अलंकृति से अलग स्वभावजन्य माना है।

सत्यनारायण ने 'ओ प्रतीक्षित' के प्रकाशन पर कहा था कि 'गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना है। मुजफ्फरपुर की एक युवा कवयित्री ने अपने नवगीत–संग्रह के साथ अपना होना प्रमाणित किया। कवयित्री थीं – शान्ति सुमन और संग्रह था – 'ओ प्रतीक्षित।' 'परछाईं टूटती' में नचिकेता ने अनुभव कर लिया था कि 'वर्ग–विभाजन पर आधारित समाज–व्यवस्था के आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक संकट का अहसास और उससे मुक्ति की तीव्र छटपटाहट उनकी गीत–यात्रा की अगली कड़ी का सूचक है।' ऐसी सूचनाओं से 'परछाईं टूटती' के गीत भरे हैं।

नक्सलवाड़ी आन्दोलन से गीत की जमीन बदलने लगी थी। इस बदलते हुए समय में शान्ति सुमन के गीतों की जमीन भी बदलने लगी थी। इनके गीतों में संघर्षरत श्रमजीवी जन के दुख और अभाव ही नहीं, उनके जुझारू होने के मजबूत संकेत आ गये थे। 'सुलगते पसीने' '79 और 'पसीने के रिश्ते' '80 में जनवादिता पूरी तरह उतरने लगी थी। उन गीतों में क्रांति के विचार और चित्र स्पष्ट रूप से आये हैं। फिर इस क्रांति पर खून के छींटे नहीं है। यह क्रांति संघर्षरत जनता के जीवन के भीतर से उपजी हुई वैचारिक क्रांति है – श्रम–संगठनों से प्रतिफलित होनेवाली है –

नहीं चाहिये सूखी रोटी/और न बासी भात
यह खोटी तकदीर एक दिन/खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

– 'सुलगते पसीने'

'पसीने के रिश्ते' में किसान–मजदूरों की एकजुटता के द्वारा व्यवस्था का विरोध और सामाजिक परिवर्तन पर बल दिया गया है।

1985 में 'मौसम हुआ कबीर' का प्रकाशन हुआ। इसमें शोषित–पीड़ित जनता के दुख–दर्द को अभिव्यक्ति मिली है। यह शान्ति सुमन के जनवादी गीतों की अगली कड़ी है। इसमें समकालीन भयावह यथार्थ को उजागर किया गया है। इन गीतों में शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध

साहस और संकल्प है –

रचो समय को माथे पर
अब लाना है बदलाव
केवल कहना देह हमारी नंगी/पेट है खाली
इससे कभी न आ सकती है/जीवन में खुशहाली
काटो अंधकार का जंगल
फूँको नया अलाव

देश की समकालीन गर्हित समाजार्थिक व्यवस्था पर शान्ति सुमन कहती हैं –

कौन कहता टूटता है नहीं/दारुण लौह पहरा
यह समय होता नहीं है/कभी अंधा और बहरा
हमरा श्रम ही हमारे बन्ध खोलेगा

इसी संग्रह में शान्ति सुमन का यह कालजयी गीत भी संग्रहित है –

थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की

यह मजदूर माँ की लोरी ही नहीं, वह अन्तःपीड़ा है जिसका इस गीत में शान्ति सुमन ने उसकी संवेदना की भीतरी तहों में उतरकर उसके बच्चों की जिद, लालसा, आत्मीय लगाव और उछाह के साथ अद्‌भुत चित्रण किया है। हिन्दी गीत के इतिहास में मजदूर बच्चे का यह बचपन नितान्त अपूर्व और विरल है। इसके पहले गरीब बच्चों का बचपन इस प्रकार लिखा नहीं गया है –

फटी हुई गंजी न पहने, खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, मांगे एक पूरा चन्द्रमा

इस गीत में माँ की आँखें चाहे जितनी भींगी हुई हों, पर अपने बच्चे की जिद और हौसले में माँ की लालसा भी शामिल है। वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि, जनपक्षधरता और प्रगतिशील अंतर्वस्तु के कारण ये गीत संघर्षशील जनता के विश्वसनीय गीत लगते हैं।

'97 में प्रकाशित 'तप रहे कचनार' में रोमान का सकारात्मक रूप

व्यक्त हुआ है। रोमान जीवन के प्रति आसक्ति का पर्याय है –

था तो अमलतास था ऋतु का प्यार
बहुत अटपटा था तब/क्रीम–गंध से अलग/दूध सा महकना
एक अलाव बहुत लाल/बहुत पतनी घाटी में/
वनफूल सा दहकना
चट्टानों के सिर लिखा हुआ स्वीकार

'02 में 'भीतर–भीतर आग' का प्रकाशन हुआ। इसमें शान्ति सुमन के नवगीत का शब्द–गठन और बिम्ब–चयन भी लौटकर आया है। इन गीतों में गीतकर्त्री ने नयी रचनाशीलता को मुहर लगाकर अपनी निजी पहचान को सशक्त किया है। बिम्बों के मामले में गीतकर्त्री अधिक संवेदनशील हैं। इन गीतों के आधार पर ही डॉ0 सुरेश गौतम ने लिखा है कि 'शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा और अपंग होगा।' डॉ0 अरविन्द कुमार ने कहा है कि 'शान्ति सुमन के यहाँ शब्द बोलते हैं चाहे वे बिम्बों के रूप में हों या रूपक के रूप में। साथ ही इनमें एक प्रकृति बोलती होती है और होती है उसकी हरियाली, उसका सौन्दर्य। यहाँ तक कि रिश्तों की अकुलाहट में भी यह प्रकृति मौजूद है।' एक–दो चित्र द्रष्टव्य हैं –

अपनी बेटी सी कोमल हरियाली
सामने किलकती खड़ी
बैठ घूम आती हवाओं के यान पर
सपने से भी लगती बड़ी
आकाश–सी नीली पगड़ी में
बाबू सँभाले हुए दाँव

X X X

फूटते धानों सरीखे/हम बढ़े, बढ़ते गये
फुनगियों से फसल की/सपने बहुत कढ़ते गये
दिनों की बारिश गई थम/तुम हँसी से हो गई दुहरी

'पंख–पंख आसमान' का प्रकाशन '04 में हुआ। यह चुने हुए एक सौ एक गीतों का संग्रह है। इसमें 'ओ प्रतीक्षित' से लेकर 'भीतर–भीतर आग' गीत–संग्रह के चुने हुए गीत हैं। इसलिये '02 ई0 तक शान्ति

सुमन के गीतों का विकास इसमें देखा जा सकता है। निश्चय ही इसमें नवगीत और जनवादी दोनों प्रकार के गीत लिये गये हैं। एक ओर जहाँ इसमें –

माँ की परछाईं सी लगती गोरी–दुबली शाम
पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता घाम
दरवाजे के साँकल/छाप उंगलियों की ठहरी
भुनी हुई सूजी की मीठी/गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं/घर के परिचय और प्रणाम

X X X

दरवाजे का आम–आँवला/घर का तुलसी–चौरा
इसीलिये अम्मा ने अपना/गाँव नहीं छोड़ा

X X X

एक हँसी आंगन से उठती/और फैल जाती तारों पर
मन की सारी बात लिखी हो/जैसे उजली दीवारों पर
एक प्यार सबकुछ होता है/जिससे डरते हैं सारे डर

X X X

जब कभी कोई बच्ची वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है

X X X

बिन धुआँते छप्परों के घर/आँख में आँजे हुए अगहन
याद आये सरसराते हवा में/हिलते हुए से ईख जैसे दिन
मछलियों की आँख में चमका/पोखरों का अतल जल गहरा

आदि जैसे गीत हैं तो दूसरी ओर इन जनवादी गीतों को भी अलग से जानने की जरूरत है –

क्या हुआ कल रात आयी/जोर की आँधी
नीबूओं की पत्तियाँ फिर/रात भर जागीं
समय कम है/कम समय है
हर मुहिम पर दिखो/हाल अपना लिखो

X X X

ये इतने चुपचाप दिखने वाले/हल के जोड़े
कहते सीना तान/नदी उनकी जो परबत फोड़े
पेट पीठ से मिले नहीं अब/यही लिखेंगे

X X X

हाथों रोक लिया करते/छानों से चूता पानी
कभी नहीं सर्दी–गर्मी से/हुई हमें हैरानी
दो जोड़ी आँखों में/एक हरा सपना है
टूटा ही है घर वह/पर, कितना अपना है

X X X

अपना तो घर गिरा/दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में/ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब/दिन–दिन होती छोटी
कहती बड़की काकी अपने गाँव की
सबसे सुन्नर काकी अपने गाँव की

ऐसे पाँच–सात गीत ही किसी संग्रह को अविस्मरणीय बनाते हैं, पर इस संग्रह में तो ऐसे ही गीत भरे पड़े हैं। यह संग्रह प्रमाणित करता है कि शान्ति सुमन नवगीतकर्त्रियों में सर्वोच्च और श्रेष्ठ जनवादी गीतकारों में एक हैं। गीत की दोनों ही धाराओं में ये अपना अलग और विशिष्ट पहचान रखती हैं।

इसके उपरान्त 'एक सूर्य रोटी पर' '06 में प्रकाशित होकर आया। इस गीत–संग्रह ने शान्ति सुमन की जनवादी छवि पर सशक्त मुहर लगा दी। इसके गीतों के बारे में लिखते हुए डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह कहते हैं – 'युवावस्था के बीतते ही उनका गीतकार फूस की तरह धधककर जल नहीं गया, वरन् जन की संवेदनशीलता से सम्पृक्त होकर वह और प्रौढ़ तथा पुष्ट होता गया। उनकी गीति–प्रतिभा न छीजने का यही रहस्य है। इन गीतों में घुटन और संत्रास, नगर–बोध या आधुनिकता–बोध न होकर विपन्नता की पीड़ा तथा व्यवस्था की अमानुषिकता का प्रतिरोध मिलता है।' 'डॉ0 मैनेजर पांडेय ने शान्ति सुमन के गीतों के बारे में कहा कि 'शान्ति सुमन प्रायः समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या व्याख्यान

नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं। उनकी इस कला में बिम्बों, प्रतीकों और संकेतों के सहारे अर्थ का विस्तार होता है लेकिन गीत सहजता की जमीन पर रहते हैं, क्योंकि बिम्ब, प्रतीक और संकेत जनजीवन से आते हैं और उसी जीवन की भाषा तथा मुहावरों में रचे–बसे होते हैं।'

शान्ति सुमन के गीतों को नचिकेता ने बड़े निकट से जाना है। वे कहते हैं – 'हिन्दी जनगीत–रचना के क्षेत्र में शान्ति सुमन, शायद, पहली स्त्री गीकार हैं, जिनकी रचनाएँ (गीत) संघर्षशील जन–संघर्षों में जुझारू मेहनतकश अवाम के द्वारा गाये गये हैं।' मदन कश्यप की धारणा इनके गीतों के बारे में अलग और विशेष है – 'उनके पास आज के यथार्थ की आन्तरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्‌घाटित करने की कला भी।'

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने शान्ति सुमन के गीतों के बारे में एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही कि 'उनका रचनाकार सहज है और सुन्दर भी और उसके स्वर पर भरोसा किया जा सकता है।'

डॉ0 रविभूषण ने भी इसलिये स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'शान्ति सुमन ने गीत के सर्वथा भिन्न रचना–विधान में समकालीन यथार्थ की विविध छवियाँ प्रस्तुत की हैं। उनके गीतों में संवेदना और विचार की सह उपस्थिति है। उनके कई नए और अछूते बिम्ब हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।' उदाहरणार्थ उनके गीतों की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

ताड़ के पत्ते बड़े नुकीले हैं
तेवरों में रंग लाल–पीले हैं

X X X

तीन सेर महुवे पर दिनभर/खटकर आई माँ
गाँवों के सीवान लाँघ/संसद में हुए जमा
दोनों हाथ जरूरी है अब/बजती ताली के

X X X

सात किलो राई–सरसों/और आठ किलो सुतली
चमकी कच्ची चाँदी की/बिछिया–टीका–हँसुली
ऊपर हँसे चन्द्रमा नीचे लहरी है नदिया

X X X

खेत बटाई के देते हैं/नहीं रात भर सोने
सपने में सपने आते हैं/घर–विवाह–गौने
पाँव रँगे हैं लाल रंग में/खुशियाँ ठहरी हैं

x x x

पटवन के पैसे होते/तो बिकती नहीं जमीन
और तकाजे मुखिया के/ले जाते सुख को छीन
पतले होते मेड़ों पर आँखें जाती हैं थम

x x x

देह साँवली पहने चकमक बूँद पसीने की
परब–तिहारों पर भी/तन पर वही पुरानी साड़ी
जंगल–झरने, पेड़–पहाड़ों/पर लगती है भारी
आधी झुकती डालोंवाली कली नगीने की

x x x

चारों ओर अँधेरा बूढ़ी/लालटेन है जलती
पुलिस न जाने क्यों आई थी/मन में पीड़ा पलती
गीतों ने कह दिया हवा यह/बदलेगी फिर से

श्रम और पसीने के इतने मर्मस्पर्शी चित्र शान्ति सुमन के समानधर्मा जनवादी गीताकारों के गीतों में कम मिलते हैं। अन्तर यह है कि उन जनवादी गीतकारों ने अपने गीतों में विचारों की आग बोयी है। उनमें उनकी संवेदना और जनता के जीवन–यथार्थ से आत्मीय लगाव के आखर झुलस गये हैं। शान्ति सुमन के गीतों में संवेदना और आत्मीय संस्पर्श की नमी बहुत है जिससे उनके गीतों की विश्वसनीयता बनी रहती है और उसका मर्मस्पर्शी भावन भी उपस्थित रहता है। यह ऐसी विरल विशेषता है जिसके कारण शान्ति सुमन के जनवादी गीत जनता के जीवन में प्रवेश कर जाते हैं और उनके जीवन के हिस्से बन जाते हैं। ऐसी विशेषता कई सारे जनवादी गीतकारों के गीतों में नहीं है।

शान्ति सुमन का अगला गीत–संग्रह 2007 में प्रकाशित हुआ। 'धूप रंगे दिन' नामक यह गीत–संग्रह इनकी गीत–यात्रा का अगला सोपान है। इसमें इनकी समस्त गीति–प्रतिभा समवेत रूप से अभिव्यक्त हुई है। डॉ0 अशोक प्रियदर्शी के शब्दों में यह 'सुमन की सुवास और जन–जीवन

का संत्रास है।' वे इन गीतों को जीते हुए जीवन की बोलती तस्वीर मानते हैं। इन गीतों को पढ़ते–सुनते हुए शान्ति सुमन की रचनाधर्मिता पर आँखें टिक जाती हैं। एक बहुत साधारण परिवेश से निकलकर शान्ति सुमन ने रचना के कितने गरिमामय शिखर पार किये। डॉ0 माधुरी वर्मा का कथन याद आता है – 'शान्ति सुमन की रचनात्मकता को लिखते हुए उनकी उन असुविधाओं को भी दृष्टिपथ में रखना होगा। बिहार की स्त्री के लिये आज भी प्रगति का रास्ता सुगम नहीं है। उन दिनों तो प्रगति की ऐसी एषणायें करना भी एक कठिन स्वप्न की तरह था। शान्ति सुमन ने उस कठिन स्वप्न को देखते हुए रचनात्मक जीवन के सौ जंगल पार किये बिना किसी अवलम्ब के।' 'धूप रंगे दिन' मेंगीतों के उपमान तो रोचक हैं ही, उनका समय और समाज–सापेक्ष होना भी उनको अलग से विशिष्ट बनाता है। अजस्र विचारों और संवेदनाओं से भरे ये गीत सचमुच 'मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत' हैं। इन गीतों में जन–संघर्षी चेतना के साथ ग्राम्य परिवेश, प्रकृति–प्रेम और लोक–जीवन के साथ किसान–चेतना भरी हुई है –

खींच न पाता रिक्शा जब/साँसों पर ढोता ठेला
जब तक जिनगी है तब तक/ऐसा ही होगा मेला
गोइठा–करसी सुलगाता है/बड़ेलाल घर में

X X X

बाँह में आकाश होगा/कटे होंगे पंख
मछलियाँ जलहीन/तट पर बिछे होंगे शंख
पास में बहने न देगी/नदी या झरने

X X X

कल बाजार बन्द था/टिन में आटे नहीं पड़े
भूखे सो जायेंगे बच्चे/बाबा नहीं फिरे
दिन के पन्नों पर धीरे स्याही हुई जमा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

X X X

शिशु की पहली गर्म साँस/जैसी अगहन की धूप
आती है तो किलकारी जैसी लगती है

'धूप रंगे दिन' में आत्मीय, सामाजिक एवं मानवीय संबंधों के इतने कशीदे कढ़े हुए हैं कि किसको देखें, किसको पढ़ें की बेचैनी होने लगती है।

इन हिन्दी नवगीत एवं जनवादी गीत संग्रहों के बीच '91 में मैथिली गीतों का संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' प्रकाशित हुआ। मैथिली गीतकारों की रचनाप्रियता एवं रूचि से नितान्त भिन्न यह गीत–संग्रह मैथिली गीत–संसार में अपनी अलग पहचान लेकर आया। मैथिली पाठकों पर इसका प्रभाव भी अन्यतम रहा। मैथिली शान्ति सुमन की मातृभाषा है। इन्होंने पहले हिन्दी में लिखने का काम किया। सच यह है कि आकाशवाणी पटना में '61 से ही भारती और चौपाल कार्यक्रम में ये मैथिली गीतों का सस्वर पाठ करती रही हैं। संग्रह के रूप में ये गीत बाद में आये।

मिथिला के पूरे परिवेश को मूर्त रूप से देखने के लिए शान्ति सुमन के 'मेघ इन्द्रनील' को पढ़ना चाहिये। इसके पहले संस्करण में प्रो0 गोविन्द झा के कथन का स्पष्ट अर्थ है कि 'मेघ इन्द्रनील' में चित्रित घर–बार, गृहस्थ जीवन, बारी–झारी, आंगन–दलान, खेत–खलिहान, पर्व–त्योहार, जन–जीवन में व्याप्त अमीरी–गरीबी आदि के संदर्भ केवल शब्द–गठन और बिम्बों के सौन्दर्य–कथन भर नहीं हैं, वरन् उन भावों और चित्रों को आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप में खड़ा करना भी है। समाजार्थिक विसंगतियों के कारण और अधिकांशतः अंतर्राष्ट्रीय बाजारवाद की घुसपैठ के कारण आज जीवन में कई सारे निषेधों का प्रवेश हो गया है। इस निषेध ने आत्मविश्वास लेकर जीवन के आदर्श और उद्देश्यों की जड़ें भी हिला दी हैं। साधारण जन की संकल्प–शक्ति भी कमजोर हुई है। इस तरह जीवन में कई सारी तकलीफें शामिल हो गई हैं। शान्ति सुमन की मैथिली कविताओं में इन निषेधात्मक प्रभावों से लड़ने की ध्वनियाँ हैं। रत्नेश्वर झा ने ठीक ही कहा है कि 'इन गीतों में व्यक्त पीड़ा और दर्द की तीव्रता से समाज की पीड़ा का अनुभव करना और उसके उल्लास से उल्लसित होना ही इन गीतों की अभिव्यंजना का प्रयोजन है।' इन गीतों के अंतर्कथ्य की सहजता, सरलता और ताजगी में ग्राम्य जीवन की यथार्थ छवि मिलती है। समकालीन जीवन की आर्थिक पीड़ा और भयावह सामाजिक यथार्थ को इन चित्रों में देख सकते हैं –

टूटल खटिया पर देह पड़य/तँ लागय तड़कि जैत पसली
पछिला सुदभरना पड़ल रहल/देहक खातिर बीकल हँसुली
टीनक थारी हो जेना जेल/चुपचाप सोचथि लाल काका

x x x

टूटल मड़ैयाक झोल भरल मनसा
मारय ये भूख जेना बरछी आ फरसा
आध टूक रोटी पर नून लगय चन्द्रमा

परन्तु इन गीतों में दुखों की लकीर को छोटा कर उम्मीद और हौसले की बड़ी लकीर खींचने का पुरजोर उत्साह दिखता है –

बाम–दहिन परती परसल छऽ/पहिर फसिल केर आस
फूटत आंकुर खुरपी चमकत/रोटी देत उजास

गीतकर्त्री ने गंगा के रूप में चित्रित मजदूरिन बेटी को व्यवस्था की विसंगति के विरूद्ध प्रतिरोध के संकेत दिये हैं –

तानह भौंह लचारी टूटत/रहत दुखक नहि लेस

बाल मजदूरों को जिन्दगी के मोर्चे पर लड़ते हुए चित्रित कर गीतकर्त्री उनके अजस्र श्रम–संघर्ष और हौसले को दिखाती हैं –

जिनगीक मोरचा पर ठाढ़ भेल/ई बच्चा बारह साल के
दोसरक खातिर अछि नींव बनल/ई खड़ा मकान करय
आठ पहर ई लगल काम पर/पीठक घाव सहय
खुरचि–खुरचि के तेज करय/ई समयक सही सवाल के

इधर 'नागकेसर हवा' एक नया गीत–संग्रह 2011 में प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह पहले के गीत–संग्रहों से अलग और नयी पहचान लेकर आया है। इसके गीतों में जीवन के विविध रंग दीखते हैं। प्रकृति, प्रेम और जीवन के विभिन्न आसंग इन गीतों में आत्मीय सुख और खुशी देते हैं। इन गीतों का एक–एक अनुभव अपना स्वयं का जिया हुआ क्षण लगता है। इस गीतों की मर्मस्पर्शिता पानी पर तेल की तरह फैलती हुई दीखती है। इनमें जीवन की आसक्ति और खुशी को सारे दुखों और विषादों के ऊपर से बहते हुए दिखाया गया है। इनमें इन दुखों और विषादों को घुलते हुए, इनको रंगहीन होते हुए भी दिखाया गया है –

पीले कुरते पहन नाचते/आँखों में वे दिन
लगता दबे पाँव आई है/अपनी सगी बहिन

X X X

खुशबू चली हवा के घर से/रोये से कचनार
जैसे बढ़ते पाँव विदा के/मन के फाँक हजार

X X X

खुले खेत की हवा सरीखे/मन दौड़े–भागे
फैला दी चिड़िया ने बाँहें/मेड़ों के आगे
जब–तब निकल पड़ी उड़ान पर/संग फूल को ले
राह खुशबुओं ने दिखलाई/रंग धूप को दे
कुमकुम बिखरा है परबत पर/भरी मांग लागे

'आई पुरवा', 'फागुन उतरा', 'धूप के कपड़े पहन', 'नदी पार करती', 'खुशी रंगी आँखें', खुशबू और हवा', 'अनहद सुख', 'सुनो शालीना', 'फूलों के कालीन', 'पुलकवाली नींद', 'आँक रही चिड़िया', 'पानी पर पानी', 'खुशी के आँसू', 'इसी शहर में' और 'बच्चा की आँखें' इस संग्रह की श्रेष्ठ गीत–रचनायें हैं। इतने श्रेष्ठ गीत एक संग्रह में हों तो उसके बारे में बहुत कुछ सोचा जा सकता है। 'इसी शहर में' गीत संग्रह में आने के पूर्व लोकप्रिय हो गया था –

इसी शहर में ललमनिया भी
रहती है बाबू
आग बचाने खातिर कोयला
चुनती है बाबू
पेट नहीं भर सका/रोज के रोज दिहाड़ी से
सोचता मन चढ़कर गिर/जाये ऊँच पहाड़ी से
लोग कहेंगे क्या यह भी तो
गुनती है बाबू

'बच्चा की आँखें' शीर्षक गीत के शब्द–चित्र मन में इतने उद्वेलन भरते हैं कि आँखें भींग जाती हैं –

जब–जब होती बारिश/ऊपर मेघ गरजता है
चिपक छाती से बच्चा/कितनी बार चिहुँकता है

भरे पड़े बाजार इतने/रंगीन खिलौने से
बच्चा की आँखें लगती हैं/खाली दोने से
दुखता दुख पसली का/वह दिन–रात सुलगता है

1994 में शान्ति सुमन की नयी कविताओं का साझा संकलन 'समय चेतावनी नहीं देता' प्रकाशित हुआ। इन्होंने इसमें कहा कि 'जब आप किसी गीत या कविता को पढ़ते हैं तो आप उस पूरे समाज–संघर्ष को ही पढ़ते हैं। कवि जिन परिस्थितियों को जीता है, कविता में उसके जिये गये अनुभव ही जीते हैं। माँ–पिता, घर–गाँव, सारे संबंधों से होती हुई कविता व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसती है और जिस आत्मीयता से गाँव घर को बुनती है कविता, उसी तीक्ष्णता से व्यवस्था के घिनौने चेहरे को भी बेनकाब करती है। इस प्रकार कविता अपना जनपक्ष सिद्ध करती है।' विचार और संवेदना के मिट्टी–पानी से कढ़ी ये कवितायें अपनी जमीन और जमीर के साथ होने की सूचना देती हैं। 'दौड़ लगाता बच्चा' का एक चित्र द्रष्टव्य है –

मेमने की तरह उछलते/दौड़ लगाता है बच्चा
सड़क के किनारे–किनारे
बूढ़ा बाबा उसके पीछे–पीछे जाता है
अपने कन्धों को सहलाता/सड़कों पर बुनी जा रही हैं –
बच्चों के पैरों की छोटी–छोटी छापें

x x x

तुम अपने अस्तित्व के हिस्से को/खींचकर निकल रहे हो
वे जड़ें नहीं टूटती हैं, पर टूटेंगी, टूटेंगी वे
और तुम्हें तुम्हारे उजाले में छोड़ देंगी
तुम्हें दीखने लगेंगे दौड़ते हँसते जाते बच्चे
सूरज की ओर

'सूखती नहीं वह नदी' 2009 में प्रकाशित हुई। शान्ति सुमन ने गीतों की तरह कविता को भी साध लिया है। साधारण जन की धड़कनों को इन कविताओं में सहज ही सुना जा सकता है। डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है – 'शान्ति सुमन की कविताओं के नये संग्रह 'सूखती नहीं वह नदी' – से गुजरते हुए महसूस किया जा सकता है कि इसमें

सचमुच एक नदी प्रवहमान है। भावना और संवेदना, नमी और तरलता, आत्मीयता और कोमलता तथा राग और स्मृति की नदी। इन कविताओं में संबंधों का एक रागात्मक लगाव है – अलगाव के विरूद्ध।' इन चित्रों से इस कथन को स्पष्ट किया जा सकता है –

अपनी जान से भी बेहद प्यारा घोंसला/
कई जन्मों की इच्छाओं का/हरापन लिये/तिनकों से जुड़ा
घोंसला/चिड़िया कहीं नहीं जाएगी/देखती रहेगी/
आँखों से उठाकर होठों से छुएगी/बेहद सुकुमार सपने

x x x

नदी सूख भी जाएगी तो नहीं होगी/चिड़िया आएगी उसके
पास/पेड़ बदल नहीं लेंगे जगह – खड़े रहेंगे/उसके
किनारे, भाग नहीं जायेंगे उसकी/बगल के मंदिर से
देवता/कोई नहीं छीन लेगा नदी से नदीपन

समकालीन निष्ठुर और हिंसक समय के तार–तार होते मानवीय संबंधों और आत्मीय सपनों के विरूद्ध इन कविताओं में मनुष्यता की गर्म साँसों का स्पर्श होता है –

हवाओं में विषैली गंध की जगह/खुशी की सुगंध बाँटने
के लिए/पृथ्वी पर अभी भी बचा है बहुत कुछ/किस कोख
से जनमेगी मनुष्यता/आओ उस बचे जीवन और
बची हुई मनुष्यता को/बचा लो

इसीलिये डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने 'सूखती नहीं वह नदी' में वैविध्य को देखा है और यह भी कि 'शान्ति सुमन की कुछ कवितायें आधी–अधूरी कथा लगती हैं।' 'अब माँ नहीं है', 'बची हुई मनुष्यता', 'नदी', 'नहीं टूटेगा पुल', 'नयी बात नहीं', 'रोटी के पेड़', 'तुम वही खुशी हो', 'माँ को खत', 'प्रेमचंद की कहानी की तरह', 'आवाजें', 'अपनों से अलग', 'पिता को खत', 'ऋतु कथा', 'पानी के सपने' आदि इस संग्रह की सामाजिक सरोकारों की बेहद संवेदनशील कवितायें कहीं जीवन के दुखों का बखिया उधेड़ती हैं तो कहीं चिड़िया की तरह आंगन में खुशी छींट जाती हैं और कहीं संबंधों की नमी बाँटती हैं –

दादी है तो पिता को/अहसास है कि उनकी माँ है/
दादी है तो हाँक लगाती/रहती है दिनभर

शान्ति सुमन ने कठोर और निष्ठुर होती हुई जिन्दगी के बीच छोटी–छोटी खुशी की पहचान की है और इस बात का संकेत देती हैं कि जीवन इन झंझावतों में भी कहीं बचा है और कवयित्री इन्द्रधनुषी परिदृश्यों में मन को बाँध देती हैं –

झूठ नहीं है ईख की गाँठ–गाँठ में/कल्लों का फूटना/
बारिश का पहला पानी चिड़िया की/पाँखों पर गिरना/
सपना देखते हुए साँसों का भापों की तरह उठना/
बिना पलक गिराये आकाश में/इन्द्रधनुष देखना

'जल झुका हिरन' नाम से शान्ति सुमन का एक उपन्यास 1976 में प्रकाशित हुआ। समीक्षकों के विचार में यह उपन्यास से अधिक गद्य काव्य लगता है। अज्ञेय ने कभी अपने उपन्यासों में वैसी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया था। 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' में उस भाषा को पाठकों की अजस्र प्रशंसा मिली थी। शान्ति सुमन ने वैसी भाषा को अपने उपन्यास के द्वारा लोकप्रिय बनाया है। वस्तुतः कथ्य से अधिक इसकी भाषा अपनी भावात्मक व्यंजना एवं नाटकीय सौंदर्य के लिए चर्चित हुई। इस उपन्यास का शीर्षक एक ऐन्द्रीय बिम्ब की तरह मन के पटल पर ठहर जाता है। इस उपन्यास की कथा के बारे में मनीष रंजन ने सही लिखा है – 'सबसे बड़ी बात है कि 'जल झुका हिरन' में समकालीन जीवन की कई छवियाँ शामिल हैं, कई परिदृश्य–सामाजिक–राजनीतिक और सांस्कृतिक भी उजागर हुए हैं। प्रेम आज भी एक अस्वीकृत, अभिशप्त परीलोक की कथा की तरह ही है। इसलिये आत्मा के अतल से भाप की तरह उठता हुआ मन का कोमल आवेग सुखांत के पहले ही स्थगित हो जाता है।' सचमुच इस उपन्यास की भाषा पाठकों के साथ चलती हुई पात्रों के संघर्षशील यथार्थ से बुनी अंतर्कथा में संलग्न रखती है।

'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आनधुनिक काव्य' शान्ति सुमन की आलोचना पुस्तक है। इसका प्रकाशन 1993 में हुआ। इसमें मध्यवर्ग की उत्पत्ति, विकास और परिणति को दिखाते हुए भारतेन्दुकाल से लेकर नवगीत तक की विस्तृत काव्यावधि में मध्यवर्गीय चेतना की अनुस्युति, सम्पृक्ति और उसकी भूमिका का विवेचन किया गया है। इस पुस्तक से प्रमाणित होता है कि शान्ति सुमन एक सशक्त गीतकार ही नहीं, विदुषी

आलोचक भी हैं। कविता की भीतरी तहों तक जाकर उसके निहितार्थ को प्रतिफलित करना शान्ति सुमन के गद्य लेखन एवं समर्थ भाषा–ज्ञान के भी प्रमाण हैं।

शान्ति सुमन ने लेखन के साथ संपादन का कार्य भी बड़ी निपुणता से किया है। 'सर्जना', 'अन्यथा', और 'बीज' का संपादन उन्होंने बड़ी कुशलता से किया। 'सर्जना' का संपादन उन्होंने अपने अध्ययन–काल में किया था। 'अन्यथा' का प्रकाशन 70–71 में किया। यह पत्रिका नवगीत के लिये प्रतिबद्ध थी। इसमें डॉ0 शंभुनाथ सिंह का एक साक्षात्कार भी छपा था। उस समय के कई नये नवगीतकारों के ताजे नवगीत भी थे। संपादकीय के अतिरिक्त स्वयं शान्ति सुमन का नवगीत की समकालीन काव्य–विधा में सुपरिणत सशक्त अभिव्यक्ति का निर्णय संकेत देता हुआ एक आलेख भी था। जब वह हिन्दी प्रतिष्ठा में पढ़ रही थीं तब से दिल्ली से प्रकाशित 'भारतीय साहित्य' (हिन्दी) और 'कन्टेम्परेरी इंडियन लिटरेचर' (अंग्रेजी) दोनों की सह–संपादिका थीं। काफी लम्बे समय तक दोनों का प्रकाशन होता रहा था।

देश की सर्वाधिक पत्र–पत्रिकाओं में शान्ति सुमन की रचनायें जिनमें गीत के साथ समीक्षायें और आलोचना भी हैं – प्रकाशित होती रही हैं। देश के अधिकांश आकाशवाणी केन्द्रों और दूरदर्शन से इनके सस्वर गीतों के प्रसारण होते रहे हैं। इन्होंने एक गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि–सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद–पाठ भी किया था। इधर पुनः 2012 के गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन में संस्कृत कविता का हिन्दी में छंदबद्ध अनुवाद–पाठ किया है।

शान्ति सुमन के हिस्से में कई सम्मान और पुरस्कार भी हैं जिनमें बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से साहित्य सेवा सम्मान एवं पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कवि रत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान एवं पुरस्कार, अवंतिका (दिल्ली) से विशिष्ट साहित्य सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्यावाचस्पति का सम्मान, हिन्दी प्रगति–समिति से भारतेन्दु सम्मान, नारी सशक्तिकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान, विन्ध्य प्रदेश से साहित्यमणि सम्मान और विशेष रूप से 2005 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग से 'साहित्य भारती' तथा 2006 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा *सौहार्द सम्मान एवं पुरस्कार उल्लेखनीय हैं।*

विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं में शान्ति सुमन की रचनाधर्मिता की चर्चा हुई है। वर्ष 2009 में 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' नाम से एक वृहत आलेख–ग्रन्थ का प्रकाशन सुमन भारती प्रकाशन, जमशेदपुर से हुआ है। यह 372 पृष्ठों की आलोचना पुस्तक है जिसमें डॉ0 शिवकुमार मिश्र, डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, डॉ0 रविभूषण, डॉ0 चन्द्रभूषण तिवारी, मदन कश्यप, रामनिहाल गुंजन, रमेश रंजक, नचिकेता, महेश्वर आदि आलोचकों के विचार इनके जनवादी गीतों के संदर्भ में दिये गये हैं। इनके नवगीत पर राजेन्द्र प्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, डॉ0 रेवती रमण, डॉ0 सुरेश गौतम, सत्यनारायण, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, डॉ0 वशिष्ठ अनूप, ओम प्रभाकर, देवेन्द्र कुमार, कुमार रवीन्द्र, डॉ0 अरविन्द कुमार, डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आदि के विचार संगृहित हैं।

इस आलोचना पुस्तक को केन्द्र, वृत्त, परिधि नाम से तीन खंडों में विभाजित किया गया है। केन्द्र में शान्ति सुमन के जनवादी गीत एवं नवगीत पर आलोचकों और समीक्षकों के विचार हैं। वृत्त में दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' लिखित 'शान्ति सुमन : व्यक्ति और कृति' में इनका संक्षिप्त जीवन–क्रम, इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि की चर्चा एवं इनके रचना–कर्म का विवेचन है। इसके साथ शान्ति सुमन का लिखा आत्मकथ्य भी है। परिधि में तीस विद्वान आलोचकों– लेखकों के द्वारा शान्ति सुमन की गीतधर्मिता एवं गीत–यात्रा तथा समवेत रचना–यात्रा पर लिखे गये आलेख है। इन आलेखों में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, ओम प्रभाकर, मधुकर सिंह, पंकज सिंह, डॉ0 रेवती रमण, सत्यनारायण, डॉ0 वशिष्ठ अनूप, कुमार रवीन्द्र, डॉ0 अरविन्द कुमार, यश मालवीय, डॉ0 सुरेश गौतम, डॉ0 सीता महतो, डॉ0 माधुरी वर्मा, नचिकेता, रामनिहाल गुंजन, नन्द कुमार, डॉ0 सुप्रिया मिश्र, डॉ0 चेतना वर्मा, डॉ0 संजय पंकज, डॉ0 अशोक प्रियदर्शी, डॉ0 लक्ष्मण प्रसाद, रत्नेश्वर झा, चन्द्रकान्त, मनीष रंजन, डॉ0 पूनम सिंह, सुजाता सिन्हा, कनक लता रिद्धि, निर्मला सिंह और डॉ0 पुष्पा गुप्ता के आलेख उल्लेखनीय हैं। इन आलेखों के संकेत इसलिये किये गये हैं कि इनके

द्वारा शान्ति सुमन के व्यक्ति और कृति के बारे में विस्तार से जाना जा सकता है।

'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' में उनके सभी गीत–संग्रहों तथा कविता–संग्रह (सूखती नहीं वह नदी) से कुछ चयनित गीत और कविता को संकलित किया गया है। इसका चयन श्रेयसी वर्मा ने किया है। इस पुस्तक में 'नागकेसर हवा' के गीत नहीं है क्योंकि इसका प्रकाशन उसके दो वर्षों के उपरान्त 2011 में हुआ है। इसमें शान्ति सुमन के विभिन्न काव्य–मंचों पर उनके गीत–पाठ के चित्र–पृष्ठ भी हैं जिनसे इस आलेख–ग्रन्थ की गरिमा का विस्तार हुआ है। इन चित्र–पृष्ठों में मुजफ्फरपुर की आरंभिक काव्य–गोष्ठी से लेकर इलाहाबाद, लखनऊ, फरक्का (प0 बंगाल), छपरा का मैथिली–मंच, धनबाद, चण्डीगढ़, वाराणसी, लुधियाना, मद्रास (अब चेन्नई), गोरखपुर, सर्गीपल्ली (उड़ीसा), बेगूसराय, हल्दिया (प0 बंगाल), कानपुर आदि कवि–सम्मेलनों में मंच पर गीत–प्रस्तुति के क्षण सुरक्षित हैं। इन चित्रों में उनके सम्मान–कार्यक्रम की छवि भी है और उनकी षष्ठिपूर्ति सम्मारोह एवं उस अवसर पर उनके एक सौ एक चयनित गीतों का संकलन 'पंख–पंख आसमान' के लोकार्पण की स्मृति भी है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और जम्मू–कश्मीर आदि के काव्य–मंच के चित्र उपलब्ध नहीं हुए। कुल मिलाकर इस आलेख–ग्रंथ की सार्थकता इस अर्थ में है कि इसमें शान्ति सुमन की गीत–यात्रा, उनकी रचनाधर्मिता की विकसनशील (गीत की) अवस्था एवं उनके गीतों के समग्र मूल्यांकन का पूरा परिदृश्य इसमें उपस्थित हुआ है। वैसे यह ग्रन्थ एक शुरूआत है। शान्ति सुमन के गीतों की पड़ताल के लिए विस्तृत आलोचना–दृष्टि की अपेक्षा है। चालीस वर्षों से अधिक अवधि की सृजनेच्छा एवं सृजनधर्मिता को अनवरत जीवन्त रखनेवाली शान्ति सुमन ने अपने समय की चुनौतियों से टकराती हुई, लगातार अराजक और अमानवीय होते जा रहे जीवन यथार्थ से जूझकर गीत की लौ को निष्कम्प जलाये रखा है। वही उनकी गीत–निष्ठा और उसके लिये सम्पूर्ण समर्पण है।

शान्ति सुमन का नारी–विमर्श भी अन्य शिक्षित और विदुषी स्त्रियों की नारी–विषयक दृष्टि से अलग और विलक्षण है। 'दैनिक जागरण' में नंदिता दास, शबाना आजमी, मृदुला गर्ग, मृदुला सिन्हा, नयना

बन्धोपाध्याय, उषा किरण खान, ममता कालिया, अनीता वर्मा आदि के साथ नारी–विमर्श के प्रसंग में इनका भी विचार प्रकाशित हुआ था। मैं उसको अविकल यहाँ दे रही हूँ। मैं यह कहना चाहूती हूँ कि अन्य लेखिकाओं, कवयित्रियों, समाजसेवियों एवं नेत्रियों की दृष्टि से शान्ति सुमन की दृष्टि अलग और ऊपर है। इसको पूरा पढ़ने पर ही समझा जा सकता है। शान्ति सुमन मानती है कि अब पुरुषों के द्वारा स्त्रियों की आजादी, अस्तित्व और श्रेय में सेंध लगने की संभावना नहीं रही। जहाँ यह संभावना है वहाँ शिक्षा और बेहतर समाजार्थिक व्यवस्था से उसको दूर किया जा सकता है। पहले तो स्त्रियों को अपनी क्षमता की पहचान करनी होगी और उसको ही अपना रक्षा–कवच बनाना होगा –

'भविष्य में जब भारतीय इतिहास के पन्ने खुलेंगे तब नारी संबंधी सामाजिक–राजनैतिक अवधारणा विशेषकर नारी–मुक्ति के संबंध में चल रही चर्चाओं को युगांतकारी घटना के रूप में देखा जायेगा। तब यह भी देखा जायेगा कि अमीर और गरीब दोनों ही वर्गों में बंटी स्त्रियों के लिए कैसी चिन्ता की गयी। यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि मीडिया के द्वारा स्त्रियों को लोकलुभावन योजनाओं का एक हिस्सा कैसे बना दिया गया।

अपने समाज और राजनीति में स्त्रियाँ अभी तक जितनी वंचनाओं, उपेक्षाओं को झेल रही हैं उस हिसाब से बहुत कुछ कहने लायक है और काफी कुछ काम करने लायक भी। मान–अभिमान की बात हो या आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान खड़ी होने में स्त्रियां पीछे हैं।

नब्बे के दशक में स्त्री–विमर्श को आगे कर उनके सशक्तिकरण की बात चली। संविधान और संसद में उनकी उपस्थिति की जोरदार चर्चा के साथ तैंतीस प्रतिशत आरक्षण की बात भी तय हुई। लेकिन सच यह है कि आजादी से लेकर आज तक स्त्री–कल्याण के नाम पर जितने हो–हल्ले हुए, काम उस रूप में नहीं। आरक्षण का सवाल भी सवाल बन कर रह गया। संसद की दीवारों में कहीं उसकी आवाज गुम हो गयी। सड़क पर उतरती तो बात कुछ और होती। फिर तसलीमा नसरीन को यह लिखना नहीं पड़ता कि *'जंजीरें तोड़ दी हैं मैंने/पान के पत्ते से हटा दिया है संस्कार का चूना।'*

नारीवादी आन्दोलन और नारीमुक्ति आन्दोलन दोनों दो सिद्धान्तों और उद्देश्यों से प्रेरित थे। पुरुष नियामक सत्ता और कतिपय उच्चवर्गीय स्त्रियों की भौतिक दृष्टि ने दोनों को एक करने का षडयंत्र किया। इससे नारी मुक्ति आन्दोलन की धार कम हुई। नारी मुक्ति तो उसके समय, समाज और स्थिति की अनिवार्य परिणति थी और है, जिसको नारीवादी मोहान्धकारों के शिविर में बार–बार धकेला गया। इससे उस विश्वास को काफी आघात पहुंचा, जिसको महादेवी वर्मा ने इस रूप में व्यक्त किया था – 'स्त्री शून्य के समान पुरुष की इकाई के साथ सबकुछ है, परन्तु उससे रहित कुछ नहीं।' जिस समाज में पुरुष होने का अर्थ अलग और स्त्री होने का अर्थ अलग है, उस समाज में मुक्त स्त्री की कल्पना भी असम्भव है। समाज के सारे नियम–कानून पुरुषों को दृष्टि–पथ में रखकर ही बने हैं। एक शब्द में कहूं तो स्त्रियों को पुरुषोचित पाखण्डपूर्ण व्यवस्था का हिस्सा बनाकर रखा गया है। स्त्रियां जितना श्रम करती हैं, जितने धैर्य और संयम का परिचय देती हैं तथा ये जितनी मेधावी और रचनात्मक हैं, उस रूप से इनको समाज में रेखांकित नहीं किया गया। सम्मानजनक पदों पर आज वे पहुंच रही हैं पर वह तस्वीर का एक भाग ही हैं। तस्वीर का दूसरा भाग वह है जहां विकसित और समृद्ध देश के इशारे पर तीसरी दुनिया के देशों और विशेषकर भारत में स्त्रियों को देह के रूप में कैद करने की साजिश जोर पकड़ रही है, जिस तरह उनकी देह के वस्त्र कम किये जा रहे हैं, वे बाजार की एक सुन्दर वस्तु बनकर दिखने को विवश हैं। देह की इस चकाचौंध में उनकी बुद्धि, अस्मिता, मेधा और समस्त सामाजिक–राजनैतिक क्रांतिकारी क्षमताओं पर पर्दा डालकर उनको बाजार की बिकाऊ चीज बना दिया गया है। इस उपभोक्तावादी, बाजारवादी दौर में सब कुछ बिकाऊ है। सौन्दर्य प्रतियोगिता का अर्थ की देह प्रतियोगिता है। इस तरह बार–बार स्त्रियों का फैलता हुआ मुक्त आकाश नुकीले धारदार लक्ष्य के अभाव में अन्धेरे में भटक रहा है। इस अन्धेरे में पुरुषों का विलास है। इस तरह उनकी मित्र भूमिका भी भटकाव का शिकार हो रही है। इस भटकाव में मुक्त स्त्रियों का मानचित्र बन नहीं पाता। स्त्रियों की महत्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्द्धा की इच्छाशक्ति की बात होती है पर स्त्रियों के संरक्षण और विकास की बात कैसे हो सकती है जब तक आजीविका से लेकर

आधिकारिक स्तर तक फैली स्त्री–पुरुष की असमानता के अन्तराल को पाट नहीं दिया जाये। स्त्रियों के प्रति फैली सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक विद्रूपता और हिंसा को रोका नहीं जाये। केवल महिला आयोग बने और उसके द्वारा होने वाले कार्य अधूरे रहें तब भी स्त्री मुक्ति प्रश्नवाचक से मुक्त नहीं हो सकती। संविधान में दी गयी समानता और स्वतंत्रता तथा समस्त अधिकारों तक उनकी पहुंच तब होगी जब उन्हें राजनीति में भी वही वर्चस्व मिले जो घर चलाने में पुरुषों के द्वारा प्रदत्त है।

घर से लेकर बाजार तक स्त्रियों को लुभाने, कमजोर करने के अजस्र परिदृश्य सामने हैं। स्त्रियां इन प्रलोभनों से अपने को अलग कर उस संघर्ष का रास्ता पकड़े जो उन्हें मुक्ति तक ले जायेगा। मुक्ति की इच्छा पर भी अनेक अंकुश हैं, पर वे अंकुश स्वतः छिन्न हो जायेंगे, जब स्त्रियां वृहत्तर सामाजिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य को अपना भविष्य बनायें। सभी कुलीन–सामंती रूढ़ियों से अपना बचाव करें, पूंजीवाद के छलावे को निरस्त कर उस सरकारी कार्यशैली का भी एकजुट विरोध करें जिनसे उनका विकास रूकता है, न्याय के मिलने में विलम्ब होता है। आज बाजार की तरह राजनीति भी हमारे जीवन का अपरिहार्य अंग है।

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य सभी में राजनीति है, कर्त्तव्य और अधिकार दोनों राजनीति से प्रतिबंधित हैं। ऐसी स्थिति में राजनैतिक रूप से जागरूक हुए बिना स्त्रियां अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकतीं। समाज और सरकार के सारे झूठे आश्वासनों, छलावों को समझकर आत्मालोचना के साथ सार्थक हस्तक्षेप करना ही श्रेयस्कर है। उससे भी अधिक श्रेयस्कर है सुन्दरता की हलचल से अलग अपने को आगामी अतीत बनाने से पहले अपनी क्षमताओं को कारगर औजार बनाना।'

इस प्रकार शान्ति सुमन का निजी जीवन भी एक लम्बा गीत ही लगता है जिसको समय–समाज और परिस्थितियों ने कई बार लिखा है। इनकी गीत–यात्रा अविराम चल रही है। इसलिये इसके प्रति एक अपेक्षा और शुभेच्छा ही जगती है। प्रत्येक रचनाकार विशेषकर एक गीतकार अपने उस श्रेष्ठ की प्रतीक्षा करता है जो अभी लिखा जाने वाला है। शान्ति सुमन को भी इसकी प्रतीक्षा है।

■